बाज़ार में हमारी स्वास्थ्य सुरक्षा

डॉ. कावेरी नाम्बीसेन

भारत का स्वास्थ्य उद्योग चौराहे पर खड़ा है। सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली को संभालने के लिए हमारे कॉर्पोरेट इच्छुक तो हैं, लेकिन इस क्षेत्र की समस्याओं से वे पूरी तरह वाकिफ नहीं हैं। स्वास्थ्य प्रणाली का निजीकरण शायद ही इसका जवाब होगा।

विश्व स्वास्थ्य दिवस (7 अप्रैल) को गुज़रे ज़्यादा वक्त नहीं बीता है। भारत कुछ मामलों में खुश हो सकता है। ग्रामीण चिकित्सा पाठ्यक्रम और गरीबों के लिए स्वास्थ्य बीमा (विशेषज्ञ सेवा सहित) जैसी सरकारी पहल अच्छी और नई हैं। लेकिन इनके लिए कुशल नेतृत्व की ज़रूरत है, ताकि मुद्दों पर गहराई से विचार किया जा सके। बैंगलोर के एक जाने-माने विशेषज्ञ ने कुछ माह पहले लिखा था : "करोड़ों लोग झुग्गियों में रह रहे होंगे, उनके लिए न पानी की व्यवस्था होगी, न शौचालयों की। लेकिन बीमार पड़ने पर उन्हें पूरी गरिमा के साथ उच्च कोटि की चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध हो सकेंगी, जैसी विकसित देशों में मिलती हैं।' उनके मुताबिक स्वास्थ्य देखभाल बहुत जटिल विषय है और उनके जैसे विशेषज्ञ ही इसका ज़िम्मा संभाल सकते हैं।

कई कार्पोरेट हॉस्पिटल भी इस विचार से इत्तेफाक रखते हैं और उन्होंने अपने साम्राज्य का विस्तार करना शुरू कर दिया है। वे कई शहरों व कस्बों में बड़े-बड़े अस्पताल बनाएंगे, और अधिक विशेषज्ञों को प्रशिक्षित करेंगे, बिस्तरो की संख्या बढ़ाएंगे और उत्सुकता से लोगों के बीमार पड़ने का इंतज़ार करेंगे।

सस्ते स्वास्थ्य बीमा, जिसके प्रीमियम का भुगतान सरकार करेगी, की वजह से उन्हें मरीज़ मिलना सुनिश्चित हो जाएगा और गरीबों की सेवा के लिए सराहना अलग से मिलेगी। ये हॉस्पिटल तो यही चाहेंगे कि पूरी स्वास्थ्य प्रणाली का निजीकरण कर दिया जाए और सरकार की भूमिका महज़ बीमा का वित्तीय भार उठाने तक सीमित रहे। वे यह भी चाहते हैं कि उन्हें अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय एजेंसियों से सस्ता कर्ज़ मिले, महंगे उपकरणों पर आयात शुल्क में छूट मिले और अस्पतालों के निर्माण के लिए सस्ते भूखंड मिलें। स्वास्थ्य सुविधाएं मुहैया करवाने की अपनी ज़िम्मेदारी से पल्ला झाड़ने के लिए शायद सरकार भी इस विचार को मान ले।

सभी लोगों की स्वास्थ्य देखभाल को निजी और कार्पोरेट उद्योग के हाथों में सौंप देने के विचार पर मेरी आपत्ति यही है कि चिकित्सा विशेषज्ञ सेहत को नहीं समझते हैं। वे तो केवल उन बीमारियों को ही समझते हैं जो उनकी विशेषज्ञता के दायरे में आती हैं और जिनके उपचार के लिए उन्हें प्रशिक्षित किया गया है। हमारे देश में 20 फीसदी से भी कम रोगों का उपचार ये विशेषज्ञ करते हैं। वे जो जानते हैं, उसमें उन्हें अपना बढ़िया कार्य करते रहना चाहिए और यह मांग नहीं करनी चाहिए कि पूरे देश में स्वास्थ्य देखभाल का ज़िम्मा उन्हें सौंप दिया जाए। यह तो वही बात होगी कि कोई इंस्टेंट नूडल्स बनाने वाली कंपनी यह मांग करे कि सभी स्कूली बच्चों को पौष्टिक भोजन उपलब्ध करवाने का ज़िम्मा उसे दे दिया जाए।

भारत में 80 फीसदी बीमारियां पांच वजहों से होती हैं - शुद्ध पेयजल का अभाव, अस्वस्थ हालात में रहना, तमाम किस्म का प्रदूषण, अपर्याप्त पोषण और तनाव। टाइफाइड, मलेरिया, क्षय रोग, त्वचा से जुड़े रोग और फेफड़ों में संक्रमण जैसी बीमारियां अस्वस्थ हालात की वजह से होती हैं। इनसे हर साल लाखों लोग मर जाते हैं। तनाव से दिल की बीमारियां, हाई ब्लडप्रेशर, पेप्टिक अल्सर, दमा, एलर्जी और मानसिक रोग होते हैं। हालांकि कई लोगों का मानना है कि तनाव केवल उच्च वर्ग के लोगों में ही होता है, लेकिन भूख, सिर पर छत न होना, बेरोज़गारी और तिरस्कार की वजह से गरीब भी लगातार चिंता से ग्रस्त रहते हैं। न तो कोई आर्ट ऑफ लिविंग कोर्स इससे उन्हें छुटकारा

दिला सकता है और न कोई तनाव प्रबंधन कोर्स। बीमार पड़ने पर इन्हें किसी उच्च कोटि के अस्पताल में उपचार दिलाना उसी तरह अपमानजनक होगा, जैसा किसी भूखे आवारा कुत्ते के सामने चाकलेट का टुकड़ा फेंक देना।

80 फीसदी बीमारियों को बेहद आसान तरीकों से रोका जा सकता है। विकसित देश दशकों पहले ही यह कर चुके हैं और अधिकांश संक्रामक बीमारियों से मुक्त हो गए हैं। इस्पात संयंत्र, विशालकाय बांध और हाइवे बनाने वाला भारत अपने नागरिकों को यकीनन स्वच्छ पेयजल मुहैया करवा सकता है। जो देश चांद पर जाने का माद्दा रखता हो, वह निस्संदेह अपने लोगों को स्वच्छ सार्वजनिक शौचालयों की सुविधा उपलब्ध करवा सकता है। विदेशी मरीज़ों को आकर्षित करने वाले चिकित्सक निश्चित तौर पर अपने लोगों की स्वास्थ्य परेशानियों को दूर करने में सक्षम होंगे।

पोषण का स्तर और मातृ एवं शिशु मृत्यु दर स्वास्थ्य देखभाल के अहम सूचक होते हैं और भारत इस सूची में काफी निचले पायदान पर है। दूसरे देशों में चल रहे लोक कल्याणकारी कार्यों से हम कई महत्त्वपूर्ण सबक सीख सकते हैं। वर्ष 1948 में स्थापित ब्रिटिश नेशनल हेल्थ सर्विस (एनएचएस) दुनिया का सबसे सफल चिकित्सा संगठन है। यह सरकार और नेशनल इंश्योरेंस द्वारा वित्त पोषित है जिसके तहत प्रत्येक कामगार के वेतन से एक निश्चित हिस्सा काटा जाता है। एनएचएस दो स्तरीय प्रणाली के तहत कार्य करता है। पहले में जनरल प्रैक्टिशनर्स हैं और दूसरे में अस्पताल। सामान्य बीमारियों का उपचार जनरल प्रैक्टिशनर्स करते हैं और गंभीर मामले अस्पतालों को रेफर कर दिए जाते हैं। एनएचएस के सभी चिकित्सक और कर्मचारी वेतनभोगी होते हैं। वरिष्ठ स्तर पर पहुंचने के बाद उनकी नौकरी स्थाई हो जाती है और उनका तबादला भी नहीं होता है।

वरिष्ठ चिकित्सकों को प्राइवेट प्रैक्टिस की अनुमति है, लेकिन इस पर कड़ी निगरानी रखी जाती है ताकि गड़बड़ियों और मनमाना शुल्क वसूलने की प्रवृत्ति को रोका जा सके। जनकल्याण के इस एनएचएस पैटर्न का अनुसरण कनाडा, ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड जैसे कई कॉमनवेल्थ देशों में किया जाता है। समाजवादी कल्याण की यह बहुत ही उत्कृष्ट मिसाल है। हालांकि बीते दस सालों में, खासकर खर्चों में बढ़ोतरी की वजह से एनएचएस को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा है। यदि एनएचएस का दुरुपयोग (कई रोगी छोटे-मोटे मामलों में भी इमरजेंसी सेवा का इस्तेमाल करके अस्पतालों के संसाधनों को बरबाद करते हैं) नहीं रोका गया तो इसकी दक्षता प्रभावित हुए बिना नहीं रहेगी।

अमेरिका में हाल ही में पारित स्वास्थ्य सुरक्षा विधेयक से अमेरिकियों की स्वास्थ्य सुरक्षा बेहतर होगी। वहां अब तक जन कल्याण की जो प्रणाली रही है, मैं उसे बताना चाहूंगी। चिकित्सक आम तौर पर विशेषज्ञता को चुनते हैं और स्नातकोत्तर का प्रशिक्षण हासिल करने के बाद उन समूहों में काम करते हैं जो निजी अस्पतालों से जुड़े होते हैं। करीब 60 फीसदी नागरिक अपने स्वास्थ्य खर्चों के लिए प्रीमियम भरते हैं। स्वास्थ्य देखभाल संगठन स्वास्थ्य बीमा मुहैया करवाते हैं। उपचार सम्बंधी फैसलों में चिकित्सकों के अलावा ये संगठन भी शामिल होते हैं। कभी-कभी तो वे यह भी तय करते हैं कि जांचें कौन-सी होंगी, प्रक्रिया क्या होगी और सर्जरी की ज़रूरत है या नहीं। सब कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि व्यक्ति ने प्रीमियम के रूप में कितना भुगतान किया है। इससे चिकित्सक और बीमा कंपनियां काफी पैसा बनाते हैं। लेकिन इस वजह से आम लोगों में चिकित्सकों के प्रति गुस्सा बढ़ा है और चिकित्सा सम्बंधी मुकदमों की संख्या में इज़ाफा हुआ है।

अमेरिका में गैर-बीमित लोगों के लिए कार्य करने वाले अस्पताल बहुत अच्छी तरह से संचालित हैं और चिकित्सक व अन्य कर्मचारी भी पर्याप्त संख्या में हैं। अमेरिकी सरकार स्वास्थ्य के मद में हर साल प्रत्येक नागरिक पर पांच हज़ार डॉलर खर्च करती है। अधिकांश पैसा अस्पतालों, सैन्य कर्मियों के उपचार और प्रशासनिक कार्यों में खर्च होता है। इसके बावजूद देश भर के अस्पतालों में 30 लाख बिस्तर खाली रहते हैं और प्रत्येक छह में से एक व्यक्ति की ऐसे उपचार तक कोई पहुंच नहीं है जिसे संतोषजनक कहा जा सके। हार्वर्ड के एक ताज़ा अध्ययन से पता चलता है कि

20 लाख अमेरिकी लोग हर साल मेडिकल खर्च की वजह से कंगाल हो जाते हैं। भारत में भी स्वास्थ्य पर खर्च लोगों के गरीबी रेखा के नीचे बने रहने का एक बड़ा कारण है।

क्या आज के युग में समाजवादी चिकित्सा प्रासंगिक है? गरीब देशों में शामिल कोस्टा रिका कई विकसित देशों के लिए ईर्ष्या का कारण है। वहां का कामकाजी वर्ग अपने वेतन का 15 फीसदी हिस्सा स्वास्थ्य देखभाल के लिए देता है। प्रत्येक नागरिक को बगैर किसी वर्ग भेद के मुफ्त इलाज मिलता है। यह इसलिए संभव हो सका है, क्योंकि वहां साधारण बीमारियों का उपचार करने के लिए बड़ी संख्या में मध्यम स्तरीय स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित किया गया है। जो लोग पैसा खर्च करना चाहते हैं, उनके लिए निजी चिकित्सा सुविधाएं भी उपलब्ध हैं, लेकिन केवल 30 फीसदी नागरिक ही इस विकल्प को चुनते हैं। कोस्टा रिका के नागरिक 78 साल की लंबी उम्र जीते हैं और वहां शिशु मृत्यु दर प्रति हज़ार महज़ 11 है जो हमसे कहीं बेहतर है। और ऐसा तब है, जब स्वास्थ्य पर वहां प्रति व्यक्ति खर्च अमेरिका द्वारा किए जाने वाले खर्च की तुलना में दसवां भाग ही है।

हमारे पड़ोस में स्थित श्रीलंका और बांग्लादेश में स्वास्थ्य सूचकांक हमसे बेहतर हैं। चीन, पूर्ववर्ती सोवियत संघ और क्यूबा जैसे साम्यवादी व समाजवादी देशों ने स्वास्थ्य के क्षेत्र में भारत की तुलना में अच्छा कार्य किया है। मलेशिया में सरकार द्वारा वित्त पोषित स्वास्थ्य सुविधाएं निशुल्क और गुणवत्तापूर्ण हैं। वहां'क्लिनिक देसा' नामक प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र स्थापित किए गए हैं जो दूरस्थ इलाकों में बुनियादी स्वास्थ्य सेवा उपलब्ध करवाते हैं। वहां नागरिक औसतन 79 साल तक जीते हैं और शिशु मृत्यु दर प्रति हज़ार 9 है (विडंबना है कि भूमंडलीकरण की वजह से मलेशिया समाजवादी जन कल्याण की नीतियों को छोड़कर विफल अमेरिकी प्रणाली का अनुसरण करने जा रहा है)।

भारत में हमारी प्राथमिकताएं क्या हैं? ग्रामीण इलाकों के लिए चिकित्सकों का प्रशिक्षण और सस्ती स्वास्थ्य बीमा योजना निस्संदेह गरीबों के लिए मददगार होगी। लेकिन इन योजनाओं को भ्रष्टाचार से मुक्त रखने के लिए बेहतर नियोजन ज़रूरी होगा। ग्रामीण और सार्वजनिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में अनुभवी पेशेवरों की सलाह काफी मायने रखती है। हमारे पास अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सराहे गए ऐसे कई चिकित्सक हैं जो इन क्षेत्रों में कार्य कर रहे हैं। इन्होंने देश के हज़ारों गांवों में स्वास्थ्य क्षेत्र का कायाकल्प कर दिया है। उनके अनुभवों की उपेक्षा क्यों की जा रही है? यह सही है कि हमारे यहां बैंगलोर में नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ मेंटल हेल्थ, दिल्ली में अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान और ऐसे ही कुछ और बहुत अच्छे अस्पताल हैं, लेकिन अधिकांश सरकारी अस्पतालों की हालत किसी से छिपी नहीं है।

केरल व गुजरात जैसे राज्यों में स्वास्थ्य बीमा योजना की शुरुआत बहुत अच्छे से हुई है। कर्नाटक में यशस्विनी योजना के बारे में खूब बातें हुई हैं, लेकिन इसके साथ मेरा अनुभव कुछ और ही रहा है। मैंने सबसे पहले एक खाते-पीते किसान से इसके बारे में सुना जिसने इस योजना का लाभ उठाया था। इसका लाभ वही व्यक्ति उठा सकता है, जिसके पास एक निश्चित आकार का खेत हो। यह उन भूमिहीनों के लिए नहीं है, जो गांवों में सबसे गरीब होते हैं। इसलिए खेत मालिक के हृदय का ऑपरेशन तो निशुल्क हो गया, लेकिन उसके मज़दूर को अपनी पत्नी के फ्रैक्चर हुए कूल्हे के ऑपरेशन पर खर्च करना पड़ा। बीमित मरीज़ों का उपचार करने वाले ग्रामीण अस्पताल शिकायत करते हैं कि सरकार से उनके पास पैसा आने में बहुत देर हो जाती है और उन्हें भारी ब्यूरोक्रेसी का सामना करना पड़ता है।

हरियाणा के एक ज़िले, जहां बीमा योजना लागू की गई थी, में ऑपरेशन से होने वाले प्रसवों की संख्या में 50 फीसदी तक की बढ़ोतरी दर्ज की गई। और ऐसा क्यों न हो? आखिर सामान्य प्रसव के लिए बीमा कवर केवल 3 हज़ार रुपए है, जबकि ऑपरेशन से होने वाले प्रसव के मामले में 25 हज़ार रुपए।

भारत एक मोड़ पर आ चुका है। सरकार दूरगामी असर वाले फैसलों को लागू करने की तैयारी में है और इसलिए वह अदूरदर्शिता को बर्दाश्त नहीं कर सकती। कार्पोरेट स्वास्थ्य उद्योग अपने साम्राज्य का विस्तार करने को लालायित है। सरकारी गलियारों में इनके प्रभाव के

मद्देनज़र उनकी यह इच्छा जल्दी ही पूरी हो सकती है। लेकिन यदि हम स्वास्थ्य के क्षेत्र में वाकई 'क्रांति' करना चाहते हैं तो हमें सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली के ज़रिए ही रोगों की रोकथाम पर ध्यान देना होगा। सार्वजनिक स्वास्थ्य के प्रति उपेक्षा का एकमात्र कारण यही है कि रोगों का उपचार करने के विपरीत उनकी रोकथाम में कोई लाभ नहीं है। इसलिए यदि हमारे कार्पोरेट विशेषज्ञ उपचार की सुविधाओं का विस्तार करने के दौरान रोकथाम की जानबूझकर अवहेलना कर दें तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

रोकथाम बहुत ही आसान है। भारत में 47 फीसदी बच्चे कुपोषित हैं (बांग्लादेश में 46 फीसदी और पाकिस्तान में 37 फीसदी बच्चे कुपोषण का शिकार हैं) और इनमें से हर साल करीब दस लाख बच्चे मर जाते हैं। इस समस्या से निपटने के लिए कई एनजीओ ने कुछ समाधान सुझाए हैं। ऐसे ही पुणे के एक समूह ने 'न्यूट्रीबार' विकसित किया है। इसे अनाजों, मूंगफली के दानों व गुड़ से बनाया गया है और इसकी लागत एक रुपए से भी कम आती है। यदि इसका उपयोग पूरक खाद्य पदार्थ के रूप में किया जाए तो यह प्रोटीन, लौह, विटामिन और खनिज पर्याप्त मात्रा में प्रदान करेगा। सरकार या कोई उदारवादी कार्पोरेट घराना इसका उत्पादन और मार्केटिंग कर सकता है। यदि गुटखा, शैम्पू, इंस्टेंट कॉफी या टॉफी एक रुपए में मिल सकते हैं तो न्यूट्रीबार क्यों नहीं जो करोड़ों बच्चों के स्वास्थ्य को पटरी पर ला सकता है।

कहा जाता है कि 'रोकथाम उपचार से बेहतर है', लेकिन यह कहावत केवल बातों तक ही सीमित रह गई है। यदि सरकार, चिकित्सा से जुड़े पेशेवर और कार्पोरेट स्वास्थ्य उद्योग अपने संकीर्ण नज़रिए को छोड़कर व्यापक फलक पर सोचें तो एक दिन हम भी एक स्वस्थ राष्ट्र के रूप में गर्व कर सकेंगे। केवल पैसा उड़ेलने से स्वास्थ्य का कायाकल्प नहीं होगा। इसके लिए ज़रूरी है दूसरों की भावनाओं को समझना, कल्पनाशीलता और कॉमन सेंस। ***(स्रोत फीचर्स)***